Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SISRRJ | Volume 1 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

अवधारणात्मक साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में अनुवाद की भूमिका

डॉ0 अनिल कुमार सिंह,
एसोशिएट प्रोफेसर : हिन्दी–विभाग
का0सु0 साकेत पी0जी0 कालेज, अयोध्या, फैजाबाद,उत्तर प्रदेश।

सारांश : तुलनात्मक साहित्य कोई स्वायत्त सर्जनात्मक विधा न होकर एक ही भाषा या विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य के अध्ययन की एक विशेष दृष्टि मात्र है। भारत जैसे बहुभाषी एवं सांस्कृतिक बहुलता वाले देश में तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन ने राष्ट्रीय एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बिना अच्छे अनुवादों के तुलनात्मक साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती। अनुवाद एक सांस्कृतिक गतिविधि है। अपने स्वभाव से ही यह अन्तरसांस्कृतिक तथा अन्तरसामाजिक होती है। अगर ऐसा न हो तो स्रोत भाषा के साहित्य की मूल संवेदना ही नष्ट हो जायेगी। अनुवाद एक तरह से स्रोत भाषा के साहित्य का लक्ष्य भाषा में सृजनात्मक अन्तरण होता है। तुलनात्मक साहित्य अध्ययन पर हुए वैश्विक चिंतन में इसकी अवतारणा बहुसंस्कृतिवाद एवं सास्कृतिक अध्ययनों के रूप में हुई है। पुराने औपनिवेशिक काल में 'यूरोप केन्द्रित' तुलनात्मक अध्ययन एवं शीतयुद्ध के दौर के क्षेत्रीय अध्ययनों और 'तुलनात्मक अध्ययन जो कि पच्छन्न रूप से औपनिवेशिक वर्चस्ववादी दृष्टिकोण एवं साम्राज्यवादी न्यस्त रणनीतियों का हिस्सा थाऋ उसका अन्त हो चुका है। तुलनात्मक साहित्य अध्ययन ने नई अमित्ताओं, लैंगिक अध्ययनों, जाति या रंग के आधारपर विषमताओं के अध्ययनों को भी अपने दायरे में ले लिया है। तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में अनुवाद की अहम भूमिका होती है। अन्तरभाषिक अनुवादों ने भारतीय विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक साहित्य अध्ययनों को जब नई गति और ऊर्जा प्रदान की है। एक अन्तरसाहित्यिक संचार का माध्यम होने के कारण तुलनात्मक साहित्य अध्ययन को समृद्द बनाने में अनुवादों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। अनुवा अपने–आप में तुलानत्मक गतिविधि है। अुवाद विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों के आपसी आदान–प्रदान को सुगम बनाता है। अनुवाद मात्र मूल कृति का भाषानुवाद नहीं होता। अनुवाद एक ही समय में स्रोत भाषा से दूर जाने तथा स्रोत भाषा को उसी समय में पुनरावस्थित करने का यत्न करता है। पुराने समय से ही हमारी भू–राजनैतिक स्थिति कुछ ऐसी रही है कि हमारा सामना निरंतर नवीन संस्कृतियों से होता रहा है। भारतीय साहित्य की अवधारणा इसी अनेकता में एकता के सिद्दान्त से परिचालित हैं। स्वतंत्र भारत में राज्यों की स्थापना भाषा के आधार पर की गई थी किन्तु यह भाषायी प्रान्तीयता हमारी विचारगत भिन्नता का आधार कभी नहीं बन पाई। स्वातंत्र्योत्तर भारत में अनुवाद गतिविधियों की महत्ता को स्वीकार करने के लिए यह आवश्यक है कि हम भारत की बहुभाषी एवं सांस्कृतिक बहुलता के संदर्भ में उसे एक सामाजिक, राजनीतिक आवश्यकता के रूप में ग्रहण करें। भारतीय साहित्य की अवधारणा के विकसित होते जाने एवं स्थापित होने के लिए यह अनिवार्य है।

बीज–शब्द : अनुवाद, तुलनात्मक अध्ययन, राष्ट्रीयता, भारतीय साहित्य, संस्कृति, बहुलता, भाषा, एकीकरण, सांस्कृतिक गतिविधि, स्रोत भाषा, लक्ष्य भाषा।

अनुवाद एक सांस्कृतिक गतिविधि है। अपने स्वभाव से ही यह अन्तरसांस्कृतिक तथा अन्तरसामाजिक होती है। अच्छा अनुवाद सिर्फ भाषानुवाद नहीं होता। स्रोत भाषा का सांस्कृतिक तथा सामाजिक संदर्भ भी उसमें अन्तरर्निहित होना चाहिए। ऐसा न होने पर स्रोत भाषा के साहित्य की मूल संवेदना ही नष्ट हो जायेगी। अनुवाद एक तरह से स्रोत भाषा के साहित्य का लक्ष्य भाषा में सृजनात्मक अन्तरण होता है। सूचना तकनीक ने दुनिया को एक वैश्विक गांव बना दिया है। एक–दूसरे की सामाजिक, सांस्कृतिक परंपराओं, रीति–रिवाजों, साहित्य, अच्छाईयों एवं बुराईयों तथा रूढ़ियों को समझे बिना हम एक साथ नहीं रह सकेंगे। भारत जैसे बहुभाषिक एवं सांस्कृतिक बहुलता वाले देश में अनुवाद–गतिविधि आपसदारी की इसी समझ की मांग की प्रतिपूर्ति करती है।

अच्छे अनुवादों के बिना तुलनात्मक साहित्य सिर्फ एक ही भाषा के दायरे मे सिमट कर रह जायेगा। इससे न सिर्फ उसकी सीमा संकुचित होगी बल्कि हम अपने देश तथा विश्व की अन्य भाषाओं के साहित्य से अनजान रह जायेंगे। साहित्य के अतिरिक्त ज्ञान तथा तकनीक के लिए भी अनुवाद की जरूरत महसूस की गई है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में ही आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'संपत्तिशास्त्र' का अनुवाद कर इस जरूरत पर जोर दिया था। आधुनिक भारत में तुलनात्मक साहित्य अध्ययनों का महत्व काफी बढ़ गया है। भारतीयता की अवधारणा के लगातार पुष्ट होते जाने की वजह से ऐसा हुआ है। इसी बीच वैश्विक स्तर पर तुलनात्मक साहित्य अध्ययन संबंधी चिंताओं में आमूल परिवर्तन हो गया है। स्त्री–विमर्श, दलित–विमर्श से लेकर मानवाधिकार के प्रश्न भी अब उससे जुड़ गए हैं। भारत की आर्थिक प्रगति ने उसे औनिवेशिक गुलामी की विरासत में मिली हीनताग्रन्थि से लगभग उबार लिया है। अब हम अपनी आंखों से दुनिया को देखना सीख गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि तुलनात्मक साहित्य अध्ययनों में पाश्चात्य साहित्य के साथ ही भारतीय साहित्य के अध्ययनों का प्रचलन बढ़ा है। दूसरी भारतीय भाषाओं को सीखने तथा उनके साहित्य को अपनी भाषा में लाने के प्रयास तेज हुए हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक साहित्य अध्ययन विभाग तो खुले ही हैंऋ भारतीय भाषाओं को पढ़ाने के विभाग भी बढ़े हैं। अनुवाद–अध्ययनों के लिए भी विश्वविद्यालयों में विभागों की स्थापना हुई है। संविधान स्वीकृत भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त स्थानीय भाषाओं तथा लोक बोलियों का साहित्य भी अब अध्ययन का विषय बनने लगा है। भिखारी ठाकुर जैसे कवियों को देखने वाली दृष्टि में परिवर्तन हुआ है।

अंग्रेजी के कम्पैरेटिव लिटरेचर (Comparative literature) के हिन्दी अनुवाद को तुलनात्मक साहित्य कहते हैं। भारतीय भाषाओं में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययन की कोई परंपरा नहीं मिलती। सर्वप्रथम रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'विश्व साहित्य' की चर्चा करते हुए साहित्यिक अध्ययनों में तुलनात्मक दृष्टि की आवश्यकता को रेखांकित किया था। औपनिवेशिक परतंत्रता के उस दौर में तुलनात्मक दृष्टि का अर्थ अधिक से अधिक भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य का यूरोपीय भाषाओं और विशेषतः अंग्रेजी भाषा के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से था। शेक्सपियर की संस्कृत के कविकुलगुरु कालिदास से तुलना इसी दृष्टि का प्रतिफलन थी। तो क्या तुलनात्मक साहित्य एक से अधिक भाषाओं में रचित साहित्य का अध्ययन है और तुलना इस अध्ययन का मुख्य आधार है? लेकिन जैसाकि प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी का मानना है कि ''चाहे एक भाषा में लिखित साहित्य का अध्ययन हो अथवा एक से अधिक भाषाओं में लिखित तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन हो, दोनों ही स्थितियों में अध्ययन का

केंद्रीय विषय साहित्य ही है और इसीलिए तुलनात्मक साहित्य को किसी एक भाषा में लिखित साहित्य के अध्ययन से अलग नहीं किया जा सकता।'' दोनों ही प्रकार के अध्ययनों के लिए हम 'तुलनात्मक साहित्य' पद का प्रयोग करते हैं। चूंकि इस तरह के साहित्यिक अध्ययनों का कलात्मक आयाम (Aesthetic dimension) होने के साथ ही सामाजिक–सांस्कृतिक आयाम (Socio-cultural dimension) भी होता है इसलिए भारतीय स्रां जैसे बहु सांस्कृतिक, बहुजातीय, बहुभाषी देश में तुलनात्मक साहित्य अध्ययन की महत्ता असंदिग्ध रूप से बढ़ जाती है। राष्ट्र (Nation) शब्द के आधुनिक अर्थ में भारतीय राष्ट्र विभिन्न राष्ट्रीयताओं का एक समुच्चय है। भारतीय राष्ट्र की अवधारणा यद्यपि काफी हद तक मुखर हो चुकी है, फिर भी भाषाई और प्रान्तीय अलगाववादी झगड़े अब भी कदा–कदा उठते ही रहते हैं। भारतीयता की अवधारणा के विकास में सांस्कृतिक बहुलतावादी दृष्टि काफी हद तक मददगार साबित हुई है। इस दृष्टि को शामिल किए बगैर तुलनात्मक साहित्य की कोई भी परिभाषा पूर्ण नहीं होगी। अतः प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी की तुलनात्मक साहित्य की यह परिभाषा काफी हद तक सही प्रतीत होती है कि ''तुलनात्मक साहित्य विभिन्न साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन है तथा साहित्य के साथ प्रतीति एवं ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों का भी तुलनात्मक अध्ययन है।'' एक और बहुत ही महत्वपूर्ण बात यह है कि तुलनात्मक साहित्य कोई स्वायत्त सर्जनात्मक विधा न होकर एक ही भाषा या विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य के अध्ययन की एक विशेष दृष्टि मात्र है।

फ्रांस में Literature शब्द का अर्थ किया जाता है 'साहित्यिक अध्ययन' लेकिन भारत में इस शब्द का अर्थ है 'साहित्य'। यह 'साहित्य' शब्द संस्कृत काव्यशास्त्र से आया है जिसका अर्थ है शब्द और अर्थ का सहित भाव। यहाँ सिर्फ शब्द और अर्थ की एकता ही नहीं है बल्कि उनकी अविच्छिन्नता का भी संकेत है। तुलसीदास ने लिखा है– 'गिरा अरथ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न'। लेकिन साहित्य में सिर्फ शब्द और अर्थ की एकता या उनके अविच्छिन्न संबंध से ही काम नहीं चलता। साहित्य में शब्द और अर्थ का यह सहित भाव विशिष्ट होता है। इसी विशिष्टता के चलते साहित्यिक सौंदर्य की उत्पत्ति होती है। शब्द और अर्थ के सृजनात्मक व्यवहार में इसका पैटर्न अलग–अलग लेखकों के साहित्य या अलग–अलग भाषाओं के साहित्य में भिन्न हो सकता है। इससे साहित्यिक पैटर्न में वैविध्य उत्पन्न होता है। इस विविधता को समझने के लिए अन्य भाषाओं का ज्ञान जरूरी है। दूसरी भाषा–संस्कृतियों के ज्ञान से ही तुलनात्मक दृष्टि का उन्मेष होता है। दूसरी भाषाओं के ज्ञान से ही अनुवाद की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है जो कि तुलनात्मक अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण औजार है। भारत जैसे विविधता से भरे देश में दूसरी भारतीय भाषाओं को सीखने तथा अनुवाद की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने की सख्त आवश्यकता है। भारतीय साहित्य की अवधारणा तभी पूर्णता प्राप्त कर सकेगी। तुलनात्मक साहित्य अध्ययन पर हुए हालिया वैश्विक चिंतन में उसकी अवतारणा बहुसांस्कृतिकवाद एवं सांस्कृतिक अध्ययनों के रूप में हुई है। जैसा कि अपनी पुस्तक 'Death of Discipline' में गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक ने लिखा है, "Since 1992, three years after the fall of the Berlin wall, the discipline of comparative literature has been looking at to renovate itself. This is Presumably in response to the rising tide of multiculturalism and cultural studies.'' पुराने औपनिवेशिक काल के 'यूरोप केन्द्रित' तुलनात्मक अध्ययन एवं शीतयुद्द के दौर के 'क्षेत्रीय

अध्ययनों' और 'तुलनात्मक अध्ययनों' जो कि प्रछन्न रूप से औपनिवेशिक वर्चस्ववादी दृष्टिकोण एवं साम्राज्यवादी न्यस्त रणनीतियों का हिस्सा था, उसका अन्त हो चुका है। एक अनुशासन के रूप में उस तुलनात्मक अध्ययन पद्दति की मृत्यु हो चुकी है। बर्लिन की दीवार का गिरना शीतयुद्ध के खात्मे के प्रतीक के रूप में घटित होता है। इसीलिए तुलनात्मक साहित्य अध्ययनों को भी नई वैश्विक परिस्थितियों में अपना रूप बदलना पड़ा है। इसने तुलनात्मक साहित्य अध्ययनों के क्षितिज में विस्तार किया है तथा नई अस्मिताओं, लैंगिक अध्ययनों, जाति या रंग के आधार पर विषमताओं के अध्ययनों को भी अपने दायरे में ले लिया है। वैश्वीकरण के चलते बड़े पैमाने पर हो रहे मानवीय प्रवासों के अध्ययन तथा मानवाधिकार संबंधी अध्ययनों ने तुलनात्मक साहित्य अध्ययन का कार्यभार बढ़ा दिया है।

भारत जैसे बहुभाषिक एवं संस्कृति बहुल तथा विशाल भौगोलिक क्षेत्र वाले देश में जहा° बोली, बानी, रीति–रिवाज, तथा जातीय और लैंगिक विषमताएं अपने विकट रूप में मौजूद हैंऋ इन अध्ययनों का महत्व बहुत बढ़ गया है। भारतीय भाषाओं को सीखने तथा अनुवाद की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने की सख्त आवश्यकता है। भारतीय साहित्य की अवधारणा तभी पूर्णता प्राप्त कर सकेगी। इससे पहले कि हम तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययनों में अनुवाद की भूमिका पर चर्चा करें हमें यह जान लेना चाहिए कि 'तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद का अन्तरसम्बन्ध' पद का वास्तविक अर्थ क्या है। अनुवाद अध्ययनों को अक्सर इन सवालों से जूझना पड़ता है कि क्या ये अविच्छिन्न सांस्कृतिक स्मृति का अन्त करते हैं या इसके विलोपन को बढ़ावा देते हैं।। वाल्टर बेंजामिन का बहुत ही प्रसिद्ध कथन है कि एक अच्छा अनुवाद स्रोत भाषा की मृत्यु तथा इसके भावी लक्ष्य भाषा में अन्तरण के बीच खिंची रेखा को लांघकर ही मूल का नया जीवन संभव बना सकता है। इससे इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि अनुवाद सिर्फ भाषाई रूपांतरण से कुछ ज्यादा है।

अच्छा अनुवाद मूल भाषा के साहित्य का लक्ष्य भाषा में पुर्नसृजन है। यहा° पुनर्सृजन का अर्थ मूल भाषा के संदर्भ तथा आशयों से विचलन नहीं है। महाकवि निराला 'चाबुक' में लिखते हैं कि मूल का अक्षरशः अनुवाद जरूरी नहीं परंतु अर्थ भी बदलना जरूरी नहीं है। तो प्रश्न उठता है कि अनुवाद सृजन है या मात्र अनुकरण है। प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी के अनुसार ''अनुवादक का काम न तो सृजनात्मक है और न ही वह अनुकरणात्मक कला है। अनुवाद में अनुवादक की प्रेरणा काम नहीं करती इसीलिए अनुवाद कार्य सृजनात्मक नहीं होता। अनुवादक तो कृति के अनुरूप सृजन करता है मगर कृति में निहित विचारों को मात्र प्रस्तुत नहीं करता, उसको रूपान्तरित करता है। इसीलिए अनुवाद कार्य अनुकरणात्मक भी नहीं होता। अनुवादक एक इस प्रकार का स्रष्टा है जो लेखक के यथार्थ के सम्मुख अपने को समर्पित करता है।''

प्रो. चौधरी कहते हैं कि ''अनुवाद एक नया 'जेस्टाल्ट' होता है– एक कलात्मक प्रक्रिया।'' इस कलात्मक प्रक्रिया में अनुवादक को मूल लेखक की दुनिया को फिर से जीना पड़ता है। उनके अनुसार अनुवादक का काम है बीज का पता लगाना। जैसा कि अंग्रेजी के कवि शेली ने कहा था कि पौधे को फिर से बीज में से फूटना पड़ता है, नहीं तो उसमें फूल नहीं खिल पाते।

ओविड के 'एपिस्टल' के अनुवाद की भूमिका में कहा गया था कि साहित्यिक अनुवाद तीन प्रकार के होते हैं। पहला 'मेटौंज' जहॉ शब्दशः अनुवाद किया जाता है। दूसरा होता है 'पैरौंज' जहाँ

अनुवादक अपनी ओर से काफी छूट लेता है और तीसरा 'इमीटेशन' जहां अनुवादक मूल के मात्र कुछ संकेतों को ग्रहण करता हुआ पूर्ण स्वतंत्रता का प्रदर्शन करता है। प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी के अनुसार ''वस्तुतः आदर्श अनुवादक शब्दों का मिलान नहीं करता, वह प्रतिपत्री भी नहीं होता। वह अधिवक्ता होता है। सफल काव्यानुवाद संपूर्ण रूप से आत्मसात्करण पर निर्भरशील होता है। अनुवादक की आत्मसात्करण की प्रक्रिया इतनी महत्वपूर्ण होती है कि वह पूरी सच्चाई के साथ अपनी ही बात कहता है और अनुवाद के नाम पर सचेतन रूप में अपने पाठकों से सीधा संचारण करता है।''

भारतीय साहित्य की अवधारणा के विकास में अनुवादों के योगदान पर विचार करने से पहले हमें समझ लेना चाहिए कि भारतीय साहित्य का अर्थ–संदर्भ क्या है। भारतीय साहित्य कहने से उसके एक वचन अर्थ का संकेत मिलता है। किन्तु यह सर्वज्ञात है कि भारत बहुभाषी तथा बहुल संस्कृतियों का देश है। तब प्रश्न उठता है कि विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखे गए साहित्य को क्या भारतीय साहित्य कहा जा सकता है। हमारी भू–राजनैतिक स्थिति कुछ ऐसी रही है कि हमारा सामना निरंतर नवीन संस्कृतियों से होता रहा है। खैबर के पार से आने वाले लड़ाके शताब्दियों तक यहाँ आते रहे हैं। उनके साथ उनकी संस्कृतियां तथा भाषा भी आती रही है। शताब्दियों के इस संसर्ग में भिन्न भाषा संस्कृतियों में एक विशिष्ट घालमेल तैयार कर दिया है। हमारी चेतना को इस मेल मिलाप के प्रति एक तरह से कंडीशंड (अनुकूलित) कर दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि दूसरी भाषा एवं संस्कृतियाँ हममें भय या आशंका या हीनता का संचार नहीं करती बल्कि अपनी स्वतंत्र इयत्ता और विशिष्टता के कारण आकर्षित करती हैं। इसे विरुद्दों का सामंजस्य कहा जा सकता है। भारतीय साहित्य की अवधारणा इसी अनेकता में एकता के सिद्दान्त से परिचालित है। इसी एकता के उद्‌देश्य को प्रमाणित करने के लिए 1954 में साहित्य अकादमी की स्थापना की गई थी। इस अवसर पर डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था कि भारतीय साहित्य एक है किन्तु वह बहुत सी भाषाओं में लिखा जाता है। सर्वप्रथम सुनीति कुमार चैटर्जी ने अपनी किताब 'लैंगवेजेस एंड लिटरेचर्स ऑफ इंडिया' में भारतीय साहित्य के लिए बहुवचन का प्रयोग किया था। यद्यपि स्वतंत्र भारत में राज्यों की स्थापना भाषा के आधार पर की गई थी किन्तु यह भाषाई प्रान्तीयता हमारी विचारगत भिन्नता का आधार कभी नहीं बन पाई है। भारतीय साहित्य में शैलीगत विभिन्नता और सांस्कृतिक विशिष्टताओं के वैविध्यमय संसार के बावजूद विषय वस्तु की एकता मिलती है। चाहे मध्यकाल की भक्ति कविता हो या उन्नीसवी शताब्दी का भारतीय नवजागरण, दोनों ही साहित्यिक, सामाजिक, आंदोलनों में हमें विषयवस्तु की एकता के दर्शन होते हैं। उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन के प्रसार के बारे में प्रसिद्द है कि 'भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद'। दक्षिण से चली यह भक्ति की धारा पूरे भारत में आप्लावित होती है। इसी तरह आधुनिक काल में नवजागरण की धारा ने तमिल में सैमुअल वेदनायकम पिल्लई, तेलुगु में कृष्णम्मा चेट्टी, मलयालम में चंदु मेनन, हिन्दी में भारतेन्दु और उनके मंडल के लेखकों, बांग्ला में मेरी हैचिन्सन, सबको राष्ट्रवाद एवं समाज सुधार की चेतना का वाहक बनाया था। आधुनिक भारतीय साहित्य अनुवाद गतिविधियों से लगातार एकता की इस भावना को पुष्ट कर रहा है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रवादी भावनाओं ने साम्राज्य की भाषा अंग्रेजी के स्थान पर किसी भारतीय भाषा को स्वीकार करने पर बल दिया था। गांधीजी के आगमन ने इस भावना में प्राण संचार किया। उन्होंने हिन्दी की अखिल भारतीयता को देखते हुए उसे ही स्वीकार करने पर बल दिया था। हिन्दी राष्ट्रीय एकता का मंच बन गई थी। 1913 में रवीन्द्रनाथ ठाकुर को उनके

काव्य 'गीतांजलि' के अंग्रेजी अनुवाद पर नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसने भारतीय अनुवादकों के सामने एक बड़ा लक्ष्य और प्रेरणा रख दी। मुंशी प्रेमचंद ने दो नोबेल पुरस्कार विजेताओं मौरिस मेटरलिंक तथा जॉन गॉल्सवर्दी की पुस्तकों के उर्दू में अनुवाद किए। लेव टॉलस्टॉय की कहानियों का भी उन्होंने अपनी तरह से भारतीय रूपान्तरण किया था। विदेशी भाषाओं के अतिरिक्त भारतीय भाषाओं से अनुवाद को भी राष्ट्रीय साहित्य के एकीकरण का माध्यम माना जाने लगा। कहना न होगा कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में अनुवाद गतिविधियों की महत्ता को स्वीकार करने के लिए यह आवश्यक है कि हम भारत की बहुभाषी एवं सांस्कृतिक बहुलता के संदर्भ में उसे एक सामाजिक राजनीतिक आवश्यकता के रूप में ग्रहण करें। भारतीय साहित्य की अवधारणा के विकसित होते जाने एवं स्थापित होने के लिए यह अनिवार्य है।

तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में अनुवाद की अहम भूमिका होती है। अनुवाद के अभाव में अध्येता विभिन्न साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन में सक्षम नहीं होंगे। अभी भारत में तुलनात्मक साहित्य अध्ययन तक एक भाषा में लिखे गए साहित्य के अध्ययन तक सीमित था। किन्तु साक्षरता की दर बढ़ने तथा संचार माध्यमों की व्यापकता और वैश्वीकरण ने नयी–नयी भाषाओं को सीखने तथा उनकी संस्कृतियों को समझने की एक नई जिज्ञासा पैदा की है। लंबे समय तक अंग्रेजों का उपनिवेश रहने के कारण अंग्रेजी भाषा ही एक मात्र खिड़की थी जो हमारे लिए बाहरी दुनिया के ज्ञान–विज्ञान तथा साहित्य की तरफ खुलती थी। विश्व साहित्य का अर्थ हमारे लिए अंग्रेजी साहित्य से ही था। 1917 की सोवियत क्रान्ति के बाद बड़े पैमाने पर रूसी साहित्य का हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। इससे भारतीय पाठकों के ज्ञान क्षितिज का विस्तार हुआ तथा यह प्रेरणा भी मिली कि हमें भी देश और दुनिया की दूसरी भाषाएं सीखनी चाहिए तथा उनका अनुवाद करना चाहिए। प्रारंभिक दौर में दुनिया की अन्य भाषाओं और यहां तक कि भारतीय भाषाओं के साहित्य का हिन्दी में अनुवाद भी अंग्रेजी के माध्यम से हुआ। किन्तु यह प्रवृत्ति अब बदल रही है तथा सीधे मूल भाषा से अनुवाद की प्रवृत्ति बढ़ी है। इस प्रवृत्ति ने हमारे दरवाजे दुनिया के लिए तो खोले ही हैं भारतीय भाषाएँ भी एक–दूसरे के करीब आई हैं। आजादी के बाद के भाषाई दंगे तथा हिन्दी विरोध की प्रवृत्ति धीमी पड़ी है। अन्तरभाषिक अनुवादों ने भारतीय विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक साहित्य अध्ययनों को एक नई गति तथा ऊर्जा प्रदान की है। एक अन्तरसाहित्यिक संचार का माध्यम होने के कारण तुलनात्मक साहित्य अध्ययनों को समृद्ह बनाने में अनुवादों की महत्ता अति महत्वपूर्ण है। तुलनात्मक साहित्य में काफी समय तक अनुवाद अध्ययन को एक उप–अनुशासन के रूप में देखा जाता था। अनुवाद अध्ययनों के महत्व ने उसके एक अलग अनुशासन के रूप में स्थापित होने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। जैसाकि कि सूसन वासनेट का कहना है–"The field of comparative literature has always claimed the studies on translation as a subfield, but now, when the last ones are establishing themselves, for their part, firmly as a discipline based on the inter-cultural study, offering as well a methodology of a certain rigor, both in connection with the theoretical work and with the descriptive one, the moment has come in which comparative literature has not such an appearance to be a discipline on its own, but rather to constitute a

branch of something else." (Bassnett, 1998:101)

अनुवाद अपने आप में ही एक तुलनात्मक गतिविधि है। साहित्यिक अनुवाद की प्रत्येक गतिविधि एक तुलनात्मक प्रक्रिया है। भारत जैसे बहुभाषिक देश में अनुवाद को कला या विज्ञान, जिस रूप में भी हो अलग अनुशासन के रूप में स्वीकार करने का समय आ गया है। अनुवाद तुलनात्मक साहित्य अध्ययन का एक अहम अंग है सिर्फ इसलिए उसे तुलनात्मक साहित्य का पिछलग्गू नहीं मान लेना चाहिए। अनुवाद विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों के आपसी आदान–प्रदान को सुगम बनाता है। जैसाकि ए.पोपोव का मानना है ''Literature borrow from each other, directly or through the medium of translation that element which is necessary for their own growth?''

इस तरह से देखने पर हमें पता चलता है कि अनुवाद गतिविधि ने साहित्यिक अध्ययनों को नवीन आयाम देने में अहम भूमिका निभायी है। दाँते, होमर, सर्वेन्तिस, दास्तॉयवस्की, बाल्जाक, लेव टालस्टॉय, चेखव, गोर्की जैसे पुराने क्लासिकल लेखक हों या आज के मार्खेज, मारियो वर्गास ल्योसा, टोनी मॉरिसन, जे.एम. कोयटजी जैसे उपन्यासकार हों। इनका अध्ययन हमारे लिए भाषा की सीमाओं का मोहताज नहीं है। अंग्रेजी या उसमें किये अनुवादों के अतिरिक्त अब हिन्दी अनुवादों का प्रसार भी हुआ है। इससे इन लेखकों को बड़ा पाठक वर्ग मिला है। गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक जैसे लेखकों ने महाश्वेता देवी के उपन्यासों के अनुवाद तथा उन पर किए अपने अध्ययनों से वैश्विक स्तर पर भारतीय साहित्य की धाक जमाई है। सलमान रश्दी जैसे कुछ पूर्वाग्रही लेखकों को छोड़ दिया जायऋ जिनका मानना है कि भारत में अंग्रेजी में लिखा जा रहा साहित्य ही श्रेष्ठ है तथा भारतीय भाषाओं के साहित्य का स्तर ऊँचा नहीं है तो आज भारतीय साहित्य ने दुनिया भर में अपनी पहचान बनाई है। यह अनुवाद गतिविधियों के कारण ही संभव हो सका है। पिछली सहस्राब्दी के अंत तक जहाँ अंग्रेजी में लिखा जा रहा एंग्लोइंडियन साहित्य ही पूरी दुनिया में भारतीय साहित्य का प्रतिनिधित्व करता नजर आता था, वहीं आज भारतीय भाषाओं के साहित्य तथा भाषा ज्ञान के लिए पूरी दुनिया में अभिरुचि विकसित हुई है।

पिछली सहस्राब्दी के अंतिम वर्षों में सोवियत संघ के पतन के साथ ही शीतयुद्द की समाप्ति भी हो गई थी। इसी दौर में एक और महान घटना हुई थी दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की समाप्ति और इस मुक्ति संग्राम के महानायक नेल्सन मंडेला की कारावास से मुक्ति। इस घटना ने पूरी दुनिया के आजादीपंसद, लोकतांत्रिक एवं समतावादी लोगों को प्रभावित किया है।

इन घटनाओं का बड़ा असर इस दौर की रचनात्मकता में दिखाई पड़ता है। जे.एम. कोयट्जी जैसे लेखकों ने औपनिवेशिक नस्लवादी घृणा तथा उसकी घृणित रणनीतियों को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। दुनिया भर में इन घटनाओं ने अस्मिताओं के लिए चल रहे संघर्षों को धार दे दी है। आज भारत में दलित लेखक, अफ्रीकी ब्लैक साहित्य से प्रभावित होता है या स्त्री लेखिकायें अफ्रीकी और अमरीकी नारीवादी लेखिकाओं से प्रेरणा ग्रहण करती हैं तो इसकी वजह अनुवादों का सहज उपलब्ध होना भी है। इसी तरह भारतीय भाषाओं के साहित्य ने भी एक दूसरे को प्रभावित किया है। जैसे हिन्दी के दलित लेखक मराठी या दक्षिण भारत में दलित लेखकों से प्रेरणा ग्रहण करते हैं तो स्त्री लेखिकाएँ अपने विमर्श की शुरुआत ताराबाई शिन्दे के 1882 में लिखे लेख 'स्त्री–पुरुष तुलना' से करती हैं। इस तरह अनुवादों ने तुलनात्मक साहित्य अध्ययन का लोकतांत्रिकीकरण संभव बनाया हैं। शरतचंद्र या महाश्वेता देवी को हिन्दी का लेखक मानने वाले भी मौजूद हैं। उर्दू के मीर तथा गालिब जैसे शायर हिन्दी

पाठकों की जुबान पर है। इसका क्षेत्र श्रेष्ठ अनुवादों को जाता है।

तुलनात्मक साहित्य अध्यन में अनुवाद की इस अतिमहत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए यह नितांत आवश्यक है कि हम अनुवाद कला, उसके स्वरूप और सिद्दान्त से परिचित हों। क्योंकि गलत अनुवाद या कई बार जल्दबाजी में किए अनुवाद से अर्थ का अनर्थ होने की संभावना बनी रहती है। जैसा कि हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि अनुवाद मात्र मूल कृति का भाषानुवाद नहीं होता। अगर ऐसा होता तो फिट्जर्ल्ड को उमर खैयाम की रुबाइयों का अंग्रेजी अनुवाद करते हुए यह न कहना पड़ता कि भूसा भरे गिद्ध की अपेक्षा मैं जीवित गौरैया चाहूँगा। इसीलिए प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी कहते हैं कि अनुवादक एक इस प्रकार का स्रष्टा है जो लेखक के यथार्थ के सम्मुख अपने को समर्पित करता है। (तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य, 125)। इस तरह अनुवाद एक ही समय में स्रोत भाषा से दूर जाने तथा स्रोत भाषा को उसी समय में पुनरवस्थित करने का प्रयत्न करता है। इस तरह से देखने पर अनुवादक का काम बहुत ही परिष्कृत तथा सूक्ष्म हो जाता है। अनुवादक का कार्य लेखक जो चाहता है उसकी व्याख्या न होकर वह क्या कहता है इसकी सूचना देना है। इसीलिए उसका काम वृत्तकार (Commentator) के काम से मिलता–जुलता है। लेखक ने क्या कहा है और किस तरह से कहा है, यही अनुवादक की समस्या होती है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं के इतिहास में अनुवादों की कड़ी को बहुत पहले संस्कृत से किए गए अनुवादों के पुराने इतिहास से जोड़ा जा सकता है। संस्कृत पाठों का गरिमाभाव से स्थानीय भाषा में अनुवाद करते हुए लेखक दोनों ही भाषाओं को अपना मानते थे। इस तरह से वे सामाजिक पुर्नगठन का काम भी कर रहे थे। भारत के औपनिवेशीकरण और बाद में राजनैतिक परिदृश्य पर महात्मा गांधी के उदय ने भी औपनिवेशिक अनुवादों को बढ़ावा दिया जो अन्यथा प्रारंभिक मध्यकालीन अनुवादों की तुलना में प्रतिक्रियावादी थे। इसके बाद सर विलियम जोन्स और मैक्समुलर आदि जैसे भारतविदों के संस्कृत से किए अनुवाद हैं। इन अनुवादों ने हमारी अपनी ज्ञान सम्पदा तक हमारी पहुंच बनाई। अनुवादों के माध्यम से ही टैगोर, प्रेमचंद, के.एम. मुंशी और वी.एस. खांडेकर ने भारतीय भाषाओं में अखिल भारतीय मान्यता पाई। आधुनिक समय में हबीब तनवीर जैसे रंग निर्देशकों ने संस्कृत नाटकों– मुद्राराक्षस और मृच्छकटिकम् का स्थानीय बोली में पुनरावतरण करके इन्हें जनप्रिय बना दिया है।

इस तरह हम देखते हैं कि तुलनात्मक साहित्य अध्ययन में अनुवादों का बहुत बड़ा योगदान है। अनुवाद साहित्यिक गतिविधियों का एक बहुत ही परिष्कृत रूप है जो स्रोत भाषा के मूल आशय का अतिक्रमण न करते हुए उसमें अन्तर्निहित विचारों, अर्थों को दूसरी भाषा में स्थानान्तरित करती है। उत्तर–संरचनावादी जैक देरिदा अनुवाद को सृजनात्मक साहित्य के अनुरूप मानते हैं। उनके अनुसार पारंपरिक साहित्यिक डिस्कोर्स में किसी एक साहित्यिक पाठ को एक निर्बाध (absolute) पाठ के रूप में मान्यता मिलती रही है। इसका विखंडन करते हुए उत्तर संरचनावादियों का मानना है कि पाठक के लिए कोई भी पाठ अर्थ की अनुपस्थिति के अनुभव का एक नया अवसर होता है। अर्थात् पाठक को पाठ में से अर्थ निकालना पड़ता है और पाठक के लिए साहित्यिक पाठ सिर्फ एक 'ब्लू प्रिंट' है। पाठ में अर्थ का संधान उसका पाठक या अनुवादक करता है। इस दृष्टि से अनुवादक का कार्य सृजनशील लेखक के स्तर पर पहुंच जाता है।

सन्दर्भ–सूची :

1- तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य–इन्द्रनाथ चौधरी
2- Death of Dicisipline - Gayatri Chakravarti Spivak.
3- Indian literature : An Introduction- Delhi University.
4- Illuminations- Walter Benjamin
5- Orientalism : Edward W. Said.